Swar Sindhu: National Peer-Reviewed/Refereed Journal of Music
A UGC CARE listed Journal
ISSN 2320–7175 (O) | Volume 12, Issue 01, January-June, 2024
http://swarsindhu.pratibha-spandan.org © The Author(s) 2024

प्रो. इन्द्राणी चक्रवर्ती द्वारा प्रकाशित ग्रंथ- संगीत मंजूषा की समालोचना

DR. KULDEEP KAUR
Assistant Professor, Sri Guru Ramdas Group of Institute, Pandher, Fatehgarh Churian

PROF. GURPREET KAUR
Former Head and Dean, Department of Music, Guru Nanak Dev University, Amritsar

सारांश: *'संगीत मंजूषा' प्रो. इन्द्राणी चक्रवर्ती द्वारा प्रकाशित द्वितीय पुस्तक है, जो हिमाचल प्रदेश अकादमी द्वारा पुरस्कृत है। इसमें 12 विविध संगीत विषयक निबंधों पर मंथन किया गया है। इसका आमुख प्रसिद्ध विद्वान 'ठाकुर जयदेव सिंह' द्वारा लिखा गया है, जो इसकी बहुमूल्य मौलिक सामग्री की उपादेयता एवं लेखिका की मननशीलता का सार्थक साक्ष्य को प्रमाणित करता हैं। प्रस्तुत पुस्तक में संगीत के विशुद्ध सैद्धांतिक विषयों का गहनतापूर्वक विवेचन कर उनसे संबंधी भ्रातियों का योग्य निराकरण किया गया है।*

बीज शब्द: *प्रो. इन्द्राणी चक्रवर्ती, संगीत मंजूषा, पुस्तक, शोध निबन्ध, अलंकार, ग्रंथ, मेल, थाट, श्रुति, ग्राम-मूर्च्छना, वीणा*

संगीत मंजूषा पुस्तक में समाविष्ट शोध निबन्धों का विषय विवेचन/प्रयोजन एवं प्रो. डॉ. इन्द्राणी[1] चक्रवर्ती द्वारा उद्घाटित एवं कथित तथ्यों की पुष्टि एवं आलोचना के विविध पहलु:

संगीत विषयक परिभाषिक शब्दावली: समस्याएं एवं समाधान

इस शोध निबन्ध में संगीत के परिभाषिक शब्दों संगीत व उसके प्रकार यथा शास्त्रीय संगीत, अर्धशास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत, हिन्दुस्तानी तथा कर्नाटक संगीत, नाद व उसके प्रकार स्वर, अध्वदर्शक स्वर, गान, गायक व उसके प्रकार व लक्ष्ण आदि विषयों पर चिन्तन किया गया है। सामान्यत: पूर्व समय से चली आ रही कुछ भ्रांत धारणाओं को तार्किक दृष्टि से विश्लेषण कर उन भ्रामक विचारों का निराकरण प्रस्तुत लेख में किया गया है।

1) वैदिक काल से लेकर भरत काल तक संगीत की परिधि गीत और वादन तक ही सीमित रही। प्रथम बार शारंगदेव ने ही गीत, वाद्य तथा नृत्य के सुमेल को 'संगीत' कहा।
2) भातखण्डे तथा आधुनिक काल के वे सभी ग्रन्थकारों द्वारा यह मानना कि आज के बिलावल में ही प्राचीन षडज़ ग्राम विद्यमान है, तर्कसंगत नही है।
3) मेल की कल्पना मुकाम से नहीं बल्कि मूर्च्छना से हुई है।
4) मेल-राग वर्गीकरण में एक समान प्रतीत होने वाले रागों को एक विशेष वर्ग में बांट कर उनमें से मुख्य राग के नाम से मेल या थाट का नाम रखा गया।
5) सामान्य रूप से चली आ रही भ्रामक धारणाएं जैसे प्राचीन परंपरा का रक्षक कर्नाटक पद्धति है और उत्तर भारत के संगीत में विदेशी प्रभाव है मान्य नहीं है।
6) नाद संबंधी प्राचीन वीणाओं में खड़े तार तथा आड़ी तरबों के प्रयोग की कल्पना को भी भ्रमात्मक माना है। उनके अनुसार अभी तक किसी भी प्राचीन ग्रन्थ में तरबों का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है।

शारंगदेव के अलंकार

प्रस्तुत निबन्ध में शारंगदेव संगीत रत्नाकर के अलंकारों को उदाहरणों सहित वर्णित किया गया है।

7) अलंकारों का विस्तृत वर्णन केवल शारंगदेव द्वारा ही प्राप्त होता है।

1 तथ्य संख्या 1 से 81 तक मनन किए गए है जो पूर्ववर्ती ग्रंथकारों द्वारा प्रतिपादित है जिसका सार तत्व शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत करने का प्रयास मात्र है।

8) भरत व शाङर्गदेव के अनुसार ‘‘जो नियत कला से युक्त होकर वर्ण विशेष में संचरण करे, वह वे स्वर समुदाय ‘अलंकार‘ है पूरी तरह से मान्य है।

9) शारंगदेव द्वारा वर्णित अलंकारों के चार भेद- स्थायी, आरोही अवरोही, संचारी वर्ण है। जिसके अंतर्गत 7 स्थायी वर्ण अलंकार, 12-12 आरोही-अवरोही वर्ण अलंकार, 25 संचारी वर्ण अलंकार, 7 लोक प्रसिद्ध अलंकार, कुल मिलाकर 63 अलंकारों का वर्णन है।

10) डॉ. इन्द्रणी चक्रवर्ती के अनुसार, ’कर्मबद्ध प्रशिक्षण नहीं दिये जाने के कारण संगीतज्ञ उनके नामों को पूर्णतया भूल गए है। परन्तु आज भी हिन्दुस्तानी एवं कर्णाटक, दोनों संगीत-पद्धतियों में यह आवश्यक है कि संगीत का विधिवत् प्रशिक्षण प्रारंभ करने से पूर्व विद्यार्थियों को अलंकारों का अच्छी तरह से गले या हाथ में अभ्यास कराया जाए, अन्यथा संगीत के प्रयोग पक्ष की शिक्षा में छात्र प्रगति नहीं कर सकता। इन अलंकारों का प्रयोग हम संगीत सीखते समय भी करते हैं।

संगीत पारिजात के अलंकारों का विवेचन

प्रस्तुत निबन्ध में संगीत पारिजात के अलंकारों का अन्य ग्रंथों यथा- संगीत रत्नाकर, राग विबोध, चतुरदंडीप्रकाशिका, रस कोमुदी, रागमाला, संगीत सारामृत इत्यादि में वर्णित अलंकारों के साथ तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है।

11) उन्नीसवीं शताब्दी में यद्यपि प्रायोगिक पक्ष प्रबल था, किन्तु शास्त्र पक्ष पर गहन-चिंतन व मनन कम एवं नहीं के बराबर रहे। संगीत के ग्रंथ दुष्प्राप्य होने के कारण अनेक भ्रांत धारणाएं भी फैली। इसी कारण संगीत पारिजात को बहुत समय तक मूल स्रोत के रूप में स्वीकार किया गया था। अहोबल हनुमान मत से संबंधित थे। उत्तर भारत में पं. अहोबल के संगीत पारिजात को लोक-समक्ष लाने का श्रेय पं. भातखण्डे जी को है। उत्तर तथा दक्षिण, दोनों पद्धतियों का मिश्रण इसमें है।

12) सर्वप्रथम भातखण्डे जी अहोबल के संगीत पारिजात को श्रोताओं के समक्ष लाये तथा यह उत्तरी एवं दक्षिण पद्धति का आधार ग्रन्थ है।

- भरत ने 39, शारंगदेव ने 63, पुंडरीक विट्ठल ने 25, तुलजा जी ने 63, सोमनाथ ने 32 तथा अहोबल ने 68 अलंकार माने है। अहोबल ने क्रमिक स्वरों के संदर्भ को अलंकार कहा है, वहीं सोमनाथ ने वर्ण के नियत कला आदि विशेषताओं सहित जो ग्रथित है, उसे अलंकार कहा है।
- अहोबल ने संगीत पारिजात में वर्णालंकार प्रकरण के कुछ श्लोकों को छोड़कर अन्य स्थानों में संगीत रत्नाकर ग्रन्थ का ही अनुसरण किया है।
- अहोबल के संगीत पारिजात जिसके अंतर्गत विवेचित अलंकार कुल 68 है, में से 4 वर्ण भेद, स्थायी, आरोही अवरोही, संचारी। ये क्रमशः 7 स्थाई वर्ण अलंकार, 12-12 आरोही-अवरोही वर्ण अलंकार, 25 संचारी वर्ण अलंकार, 7 लोक प्रसिद्ध अलंकार, 5 रागोपयोगी वर्ण अलंकारों का विवेचन किया गया है।
- यहां यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि श्रीकंठ ने अपनी ’रसकौमुदी’ में अलंकारों के वर्णन के समय केवल ’स्वर-संदर्भ’ का उल्लेख किया है तथा इसकी कोई व्याख्या नहीं की है।

संगीत में गुण-दोष विचार

प्रस्तुत शोध-निबन्ध में विभिन्न मान्य ग्रन्थकारों नारद, भरत, शारंगदेव, निशशंक, कुंभ, पार्शवदेव, सोमेश्वर, अभिनव गुप्त द्वारा संगीत में गुण, दोष, विचार पर मंथन किया गया है। संगीत में पूर्व ग्रंथकारों द्वारा गान, गायक-गायिका, आचार्य, शरीर गुण, कंठ गुण, वैणिक-वैणुक (वंशवादक), इत्यादि के अतिरिक्त फुटकर गुण-दोषों का वर्णन प्रस्तुत किया गया है।

- गुणों से गान परिवर्तित होता है, यानी आगे बढ़ता है और दोष से उसका निरसन होता है। अतः गुण-दोषों को यत्न से जानना चाहिए।
- चूंकि गान का कार्य उपरंजनात्मक है, गांधर्व का नहीं अत्य गुण-दोष के लिए ही उपयुक्त है।
- गान शब्द में भी प्रयोजनानुसार अर्थ-भेद किया गया है। नारद ने 'गानस्य तु दशविधा गुणवृत्तिस्तद्यथा' कहा है, जहाँ अभिनवगुप्त ने 'गान' शब्द की पुष्टि की है। उनके अनुसार नारदादि गांधर्वों को 'गान' के लिए नियोजित किया गया है। यहाँ 'गान' शब्द सामान्य वचन है। यहाँ 'गान' का अर्थ गीति से लिया गया है, जिसे शारंगदेव ने 'गीतगुण' कहा है।
- 'नारदीय शिक्षा' में गान या गीत के 10 गुण हैं - रक्त (सुरक्त - 'संगीत-रत्नाकर'), पूर्ण अलंकृत, प्रसन्न, व्यक्त, विक्रुष्ट (विकृष्ट - 'संगत-रत्नाकर'), श्लक्ष्ण, सम, सुकुमार, मधुर। इन्हीं को क्रम-भेद कर 'संगीत-रत्नाकर' में वर्णित किया गया है।
- क्योंकि शारीर (शारीर - शरीर से उद्भूत-कंठ) स्वर सर्वप्रथम है, अतः क्रमशः गातृ, विपंची, वंश-वादक के गुण को भरत ने बताया है। उनके अनुसार गाता (गायक) के प्रत्यग्रवय, स्निग्ध, मधुर, उपचितकंठ, लय, ताल, कला, पात, प्रमाण, योग इत्यादि गुण हं ै।
- नारद के गीत के दोष के रूप में जिनकी व्याख्या की है, उनमें से प्रायः सभी प्रकार का अंतर्भाव निशशंक ने गायक के दोष में किया, जो अर्थानुकूल है संदष्ट, उद्धुष्ट, सूत्कारी, भीत, शंकित, कंपित, कराली, विकल, काकी, विताल, करभ, उद्भट, झोंबक, तुंबकी, वक्री, प्रसारी, निमीलक, विरस, अपस्वर, अव्यक्त, स्थानभ्रष्ट, मिश्रक, अनवधान, सानुनासिक इत्यादि इसके रूप है।
- भरत ने आचार्य के भी गुण बतलाए हैं, छह गुणों की परिपाटी आचार्यों में होनी चाहिए यथा ज्ञान, विज्ञान, करण, वचन, प्रयोगसिद्धि, निष्पादन इत्यादि है।
- भरत ने कंठ के पांच दोष बतलाए है कपिल, अव्यवस्थित, संदष्ट, काकी, तुंबकी इत्यादि।
- वर्तमान समय में यद्यपि संगीत के हर क्षेत्र में गुण-दोष का इतना कठोर नियम कोई मानता नहीं या जानता भी नहीं, फिर भी आधार-रूप में अधिकांश गुण-दोषों का ज्ञान प्रायः सभी गायक या वादक रखते हैं, भले ही ही उनकी संज्ञाओं से भली-भाँति परिचित न होते हों।
- जिन गुण-दोषों का विवेचन एवं वर्णन इन महानुभवों ने किया है, वह मानव-जीवन के प्रत्येक आचार-व्यवहार के गम्भीर अध्ययन का परिणाम है। न इसका अमान्य किया जा सकता है, न ही इसमें और अधिक गुण-दोषों का विशेष योग किया जा सकता है।

संगीत में वृत्ति एवं गीति

वृत्ति और गीति की अवधारणा से परिचित कराते इस निबन्ध में विभिन्न ग्रन्थकारों के मतानुसार वृत्ति का परिचय, सामान्य लक्षण, भरत से शारंगदेव तक वृत्ति के सामान्य अर्थ की व्याख्या की गई है।

- भरत के परवर्ती आचार्य के अनुसार तीनों वृत्तियां छह तत्वों द्वारा परिभाषित होती है। मतंग ने इसे पूर्णरूपेण विवेचित किया है।
- वर्तमान समय के संगीत में यतियों का नियम प्राप्त नहीं होता। सम, अतीत व अनागत यह नाम आज भी प्रयोग किए जाते हैं, किंतु वर्तमान 'ग्रहों के साथ' विषम ग्रहों की चर्चा स्पष्टीकरण की मांग करती है।
- वृत्ति अपने अर्थ में 'गीत तथा वाद्य के प्रयोग वैचित्रय के प्रदर्शन' को द्योतित करती है। चूंकि वृत्ति पद गीति से संबंधित है, अतः मागधी, अर्धमागधी, संभाविता और पृथुला में से वृत्ति तीन गीतियों से संबंध रखती है।

- आज के संगीत में गीति और वृत्ति का प्रयोग प्राचीन विद्वत्जनों के वर्णन के सम्मान नहीं मिलता, जिस कारण उदाहरण देने में असमर्थता रहती है। फिर भी इससे प्राचीन संगीत परंपरा का बोध अवश्य हो जाता है।

ग्राम-मूर्च्छना पद्धति में तान

प्रस्तुत शोध निबन्ध में प्राचीन विद्वानों/ग्रंथकारों द्वारा ग्राम-मूर्च्छना पद्धति में तान को व्याख्यायित किया गया है।

- पहले अंश के अन्तर्गत मूर्च्छना का लक्ष्य मात्र स्थान प्राप्ति बताया गया है, जिसमें षाड़व-औड़व भेद को शुद्धतान कहा गया है, वहीं सात स्वरों के प्रस्ताव को कूटतान कहा गया है।
- मूर्च्छना-तान का उद्देश्य स्थान प्राप्त करना था। भरत के बाद स्थान प्राप्ति का साधन केवल संपूर्ण मूर्च्छना को ही माना जाने लगा। इसके अतिरिक्त शुद्धतान साधना हेतु और कूटतान देशी के लिए उपयोगी मानी गई।
- प्रयोग की दृष्टि से शुद्धतान न केवल गान्धर्व में बल्कि जाति राग भाषांदि के लिए उपयोगी सिद्ध हुई और कूटतान स्वर-संचार विधि का गणितीय सिद्ध रूप माना गया। शुद्धतान का उपयोग जहां मार्ग में रहा, वहीं कूटतान का देशी में।

श्रुति, सारणा तथा मूर्च्छना का विभिन्नार्थक प्रयोग

प्रस्तुत शोध निबन्ध में श्रुति, सारणा एवं मूर्च्छना का केवल संगीत में ही प्रयोग ना होने के तथ्य को उदाहरण देकर बताया गया है। इन तीनों संज्ञाओं का शास्त्रीय अर्थ के अतिरिक्त सांगीतिक तथा सामान्य विषय के लिए उपयोग आदि पर विचार प्रस्तुत किया गया है। विभिन्न अर्थ प्रयोग पर तार्किक मंथन किया गया है।

- श्रुति, सारणा और मूर्च्छना संगीत के अतिरिक्त काव्य में भी प्रयुक्त होते हैं। वीणा के संदर्भ में भी इनके विभिन्न अर्थों को देखा जा सकता है।
- किसी भी ध्वनि को प्रकट करने से वह स्वर हो जाती है, श्रतिमात्र नहीं रह पाती अतः श्रुति को धारणा ;ब्वदबमचजद्ध भी समझ सकते हैं।
- पार्श्वतन्त्रियों को 'श्रुति' कहने की परम्परा का लिखित प्रमाण के रूप में उलेख सर्वप्रथम संगीत रत्नाकर की टीका करते समय कल्लिनाथ तत्पश्चात रामामात्य के 'स्वरमेल कलानिधि' में मिलता है।
- 'श्रुति' का एक और अर्थ 'आधार स्वर' या श्रुवदमश् देने के रूप में लगाया जाता है। कर्णाटक संगीत में तम्बूरा को मिलाते समय 'श्रुति मिलाना' या 'श्रुति छेड़ना' ही कहते हैं। हिन्दुस्तानी संगीत में इसे 'स्वर छेड़ना' कहते है। रामामात्य, सोमनाथ आदि ने इसका उल्लेख नहीं किया, किन्तु तुलजाजी ने किया है।
- श्रुति के प्रकृत स्थान तथा उनकी संख्या के ज्ञान का उपया 'सारणा चतुष्टयी' है। इसके अतिरिक्त 'सारणा' शब्द का प्रयोग अन्य अर्थों में किया गया है जो वीणा से सीधे सम्बन्ध रखता है।
- कुम्भानुसार 'सारणा भेद' का अर्थ यहां तन्त्री के मेल व भेद से करना चाहिए, जिससे विभिन्न प्रकार की मूर्च्छनाएं बनती हैं।
- 'सारणा को कम्रिका' का पर्याय माना गया है। वामहस्त से धारण कर बजाये जाने वाला दण्ड चाहे वह लकड़ी का हो, चाहे किसी धातु का हो, कम्रिका या सारणा है।
- ग्रामों के क्रमिक सप्त स्वर-युक्त व्यवस्था को 'मूर्च्छना' कहा गया है। सप्त स्वर के साथ 3 ग्राम और 21 मूर्च्छना की परम्परा तो ध्रुवपद के पदों के साथ मध्ययुग के प्रायः सभी उत्तर के गायकों से सम्बन्धित दिखते हैं। नारदीय शिक्षा, मतंग की बृहदेशी और

नरवर्ती ग्रन्थों में षड्ज-मध्यम-गांधार, ऐसे तीन ग्राम और हर ग्राम की सात-सात मूर्च्छनाएँ होने से 21 मूर्च्छनाओं का उल्लेख मिलता है।

- मूर्च्छना विधि का आभास आज भी पाश्चात्य संगीत के बदलते मूल स्वर पर गायन-वादन की प्रथा में मिलती है।
- मध्ययुग में मूर्च्छना का प्रयोग गांधर्व के समान न था, वीणा पर 'मूर्च्छना' का अभ्यास किया जाता रहा। जिसका प्रमाण सेनिया घराने में एवं स्वर्गीय उस्ताद अलाउद्दीन खां साहब की शिष्य परम्परा में मिलता है। प्राथमि शिक्षा देते समय ये बिलावल के स्वरों में (जिसे आधुनिक काल में शुद्ध स्वर सप्तक माना जाता है) क्रमश स से सं, नि से नि, ध से ध, प से प, म से म, ग से ग, रे से रे और पुनः स से स तक का अभ्यास 'मूर्च्छना-अभ्यास' के नाम से कराते हैं। मूर्च्छना की ऐसी शिक्षा लेखिका को भी मिली है। परम्परावादी अन्य घरानों में भी मूर्च्छना की ऐसी शिक्षा अद्यतन प्रचलित है।
- कालान्तर में परम्परावादी वैणिकों में मूर्च्छना का विभिन्नार्थ प्रयोग होता रहा और आज भी होता आ रहा है। श्रुति, सारणा और मूर्च्छना इनका सांगीतिक और भिन्नार्थक दोनों प्रयोग वीणा के परिप्रेक्ष्य में हुआ। कुछ ही लोग इन अर्थों और प्रयोग का ज्ञान रखते है। अतः 'बहुजनहिताय' इन्हें स्पष्ट करना अत्यन्त आवश्यक रहा।

वीणा-वादन की प्रविधि- धातु तथा करण

इस शोध लेख में विविध सांगीतिक ग्रन्थों यथाः 'नाट्यशास्त्र', 'नाट्यशास्त्र की टीका (अभिनव भारती)', 'भरत भाष्यम', 'संगीत रत्नाकर', 'संगीत शास्त्र' और 'भारतीय संगीत' वाद्यों के आधार पर धातु, करण तथा हस्तव्यापार (एकतन्त्री एवं किन्नरी) पर की चर्चा के साथ भरत के समय तक एकतंत्री पर कोई वर्णन ना मिलना और शारंगदेव द्वारा एकतंत्री वीणा पर ही हस्त-व्यापार के विवेचन की जानकारी भी प्राप्त होती है।

- भारतीय संगीत में वीणा का महत्व अत्यधिक है। दो प्रकार की वीणाएं मानी गई हैं - 'शारीरी' तथा 'दारवी'। कंठ, जो ईश्वर-प्रदत्त है, उसे 'शारीरी वीणा' और दारू या काष्ठ से निर्मित वाद्य को 'दारवी वीणा' कहा गया है।
- वीणा स्वरात्मिका है, अर्थात स्वर के व्यस्त (बिखरे) व समस्त (एक साथ) रूप का समवाय इसमें हैं। स्वर व्यस्त रूप है, ग्राम समस्त रूप। दारवी वीणा के अन्तर्गत स्वर, श्रुति ग्राम, मूर्च्छना, वृत्ति, शुष्क, साधारण, जाति, वर्ण, अलंकार, धातु आदि आ जाते हैं, जिन्हें देखा, सुना व परखा जा सकता है।
- 'धातु' वीणा-वादन की प्रविधि है। जैसे आज हमारी सम्पूर्ण वादन-क्रिया 'दा, रा, दिर, दा रदा -र दा', इस प्रकार के बोलों पर आश्रित है, तद्वत् प्राचीन वैणिकों की वादन-क्रिया धातुओं पर आश्रित थी। उन्हीं की सहायता से वीणा के हस्तव्यापार, वाद्य (बाज), करण, निर्गीत वाद्य आदि की रचना हुई।
- धातु सभी वाद्यों के लिए उपयोगी हैं। उपर्युक्त चतुर्विध धातु प्राचीन वीणा-वादन प्रविधि ;ज्मबीदपुनमद्ध का ज्ञान कराती है।व्यंजन धातु के कुछ रूप परवर्ती वीणा-वादन के हस्तव्यापरों के साथ कहीं-कहीं मिलते हैं। भरत ने हस्त-व्यापारों का उल्लेख नहीं किया है। उनकी वीणाओं का वादन तार की लंबाई को घटा-बढ़ाकर कभी-कभी प्रयोजनानुसार किया जाता था, आमतौर पर नहीं।
- वाद्यों की नई-नई खोज के साथ वादन विधि का भी विकास हुआ। हस्तव्यापारों का मूल स्त्रोत व्यंजन धातु में खोजने जाएं तो अयथार्थ नहीं होगा।

वीणाओं पर हस्त-व्यापार तथा वाद्य

उपर्युक्त शोध निबन्ध में वीणाओं पर हस्त-व्यापार तथा वाद्य से सम्बन्धित तर्कपूर्ण जानकारी प्रदान की है यथा वादन के समय वाद्य पर हाथ रखने की सही वादन क्रिया विधि, वाद्य वादन का माध्यम, वाद्यों के प्रकार, दशविधवाध, भरत के बाद वादन-विधि में विकास, शारंगदेव द्वारा हस्त-व्यापार और वाद्यों के प्रकारों को एकत्रित कर वर्णित, कुम्भ के समय तक किन्नरी के लिए विशद विवरण इत्यादि नवीनीकरण को प्रतिपादित करता है।

- किन्नरी वीणा सारिकयुक्त है और एकतन्त्री वीणा सारिकहीन। मुख्यतः वीणा, विपंची एवं चित्रा पर ही समस्त वादन प्रविधि ;जमबीदपुनमेद्ध आधारित है। वाद्यों की निर्माण-विधि व उनके वादन की प्रविधि, दोनों का विकास परस्पर सम्बद्ध है और एक का प्रभाव दूसरे पर पड़े बिना नहीं रहता। इन दोनों के साथ अभिन्न रूप से जुड़ा हुआ तत्व है वस्तु ;बवदजमदजद्ध बजाने का माध्यम क्या है, उसकी प्रविधि क्या है और क्या बजाया जाता है - ये तीनों एक दूसरे से अलग नहीं किए जा सकते। वीणा के स्वरूप को देखना, हस्तव्यापार के रूप में इस विधि का विस्तृत वर्णन अवश्य ही भरत ने नहीं किया, जिसका परवर्ती ग्रन्थकारों के विभिन्न वीणाओं पर स्व-स्वविशेषता सहित प्रस्तुत किया है।
- भरत के अनुसार ही शारंगदेव के व्यंजन धातु का वर्णन किया है, परन्तु हस्तव्यापार तथा वाद्य को भी साथ-साथ वर्णित किया है। व्यंजन धातु का विकास भरत-काल से बहुत पूर्व ही हुआ। उसमें अंगूठे का प्रयोग अत्यधिक बताया गया है। शारंगदेव के समय तक आते-आते यह प्रयोग नाम मात्र को रह गया तथा उसके स्थान पर नया विकास हुआ, जो हस्तव्यापार के नाम से जाना गया।
- शारंगदेव ने सारिकायुक्त वीणा किन्नरी के लिए अलग से हस्त व्यापार नहीं कहा, किन्तु राणा कुम्भ के अन्य प्रकार के हस्तव्यापार तथा वाद्य का उल्लेख देशी किन्नरी वीणा के लिए किया है।
- हस्त व्यापार तीन प्रकार के हैं वाम हस्त व्यापार, दक्षिण हस्त व्यापार तथा उभय हस्त व्यापार। ये तीनों परस्पर सम्बन्धित हैं।
- हस्त व्यापारों के समायोग या समावेश से जो वादन होता है, वह 'वाद्य' कहलाता है। राणा कुंभ के अनुसार चिपकार हस्त व्यापार का वादन-विन्यास ही 'वाद्य' कहलाता है। हस्त व्यापार की क्रियाओं के योग का क्रम 'वाद्य' की संज्ञा से भूषित किया जाता है। ये दशविध हैं, जो क्रमोल्लिखित है छन्द, धारा, कैकुटी, कंकाल, वस्तु, दुरत, गजलील, दण्डक, उपरिवाद्यक, पक्षिरूत इत्यादि है।
- शारंगदेव ने किन्नरी-लक्षण में वाद्य-विधि का कोई उल्लेख नहीं किया, परन्तु महाराणा कुम्भकर्ण ने किन्नरी-प्रकरण में उनके लक्षण के साथ-साथ वाद्यविधि की व्याख्या भी की है, जो विकास क्रम का द्योतक है।
- किन्नरी की हस्तज क्रिया दो प्रकार की है - वाम हस्तव्यापार एवं दक्षिण हस्तव्यापार। उभय हस्तव्यापार का उल्लेख कुंभ ने नहीं किया है।
- संगीत के क्षेत्र में चाहे जो भी विकास होता रहा हो, भरत या शारंगदेव के धातु एवं वादन-विन्यास में सभी मूलभूत तत्वों का ग्रहण हुआ है। लघु-गुरु अक्षर या विभिन्न प्रकार के सन्निवेशों का जो भी रूप इन्होंने बताया है, उससे मौलिक रूप में भिन्न या नए किसी अन्य रूप की प्रायः संभावना नहीं है।
- वर्तमान संगीत में धातु या हस्ताव्यापारों के नाम लुप्त हो गए हैं, उसका एकमात्र कारण उचित शिक्षा का अभाव है। अगर शिक्षित वर्ग (जो शास्त्रज्ञ व संगीतज्ञ दोनों है) इन संज्ञाओं का पुनः प्रवर्तन करें तो संगीत के विकास का पथ अवरूद्ध न होकर अधिक

सुगम और सुदृढ़ होगा तथा इससे अपनी प्राचीन संस्कृति का पुनरूमेष होने के साथ-साथ पूर्वाचार्यों के प्रति श्रद्धा ही प्रकट होगी।

वीणाओं में आधार स्वर के क्रमिक परिवर्तन

प्रस्तुत शोध निबन्ध में प्राप्त होने वाले अधिकतर परवर्ती ग्रंथों में से भरत, मतंग, शारंगदेव के ग्रंथों की सैद्धांतिक प्रासंगिकता एवं भूमिका निर्धारित करते हुए सारिकायुक्त वीणा (किसी विशेष काल स्वर का ज्ञान) को प्रस्तुत किया गया है तथा उसके महत्व को प्रतिपादित करते हुए उसे स्वर परिवर्तन का एकमात्र आधार भी बताया गया है।

- मत्तकोकिला को 'कानून' - मानने का कोई आधार नहीं है। कल्लिनाथोक्त मत्तकोकिला की अन्य संज्ञा स्वरमंडल को तुलजा जी ने भी इसी नाम से उद्धृत किया है और आज भी वही रूप वर्तमान है। हां, तारों की संख्या में कुछ आधिक्य हो गया; और वह बजाने की सुविधा के लिए ही हुआ।
- एकतंत्री का जो उल्लेख 'नाट्यशास्त्र' के काशी-संस्करण के 29वें अध्याय में हैं, अन्य पाठों को देखते हुए उसे प्रक्षिप्त मानना चाहिए, क्योंकि अन्य श्लोको के साथ इसकी संबद्धता कम है ओर क्रम भेद भी है। शारंगदेव ने इस वीणा का नाम घोषा, घोषवती, एकतंत्री बताया है।
- स्वर-प्रयोग की व्यवस्था दो प्रकार की विधि से संभव है। प्रथम विधि में षड्जग्रामिक गंधार का उत्कष्र कर उसे अन्तरगंधार में परिवर्तित किया जाता है तथा इसी षड्ज-ग्रामिक स्वरों की संज्ञाओं में परिवर्तन कर मध्यम ग्रामिक स्वरों की प्राप्ति की जाती है। पुनः षड्जग्रामिक षड्ज को ही मध्यमग्रामिक मध्यम नाम देकर अग्रिम स्वरों को प्राप्त किया जाता है। अतः विशेष परिवर्तन किए बिना वीणा की तंत्रियों में एक ग्राम से दूसरे ग्राम में भ्रमण किया जा सकता है। यह विधि उन वीणाओं के लिए सुगम है, जिनमें प्रत्येक स्वर के लिए भिन्न-भिन्न तंत्रियां होती थी।
- सारिकायुक्त वीणा मतंग के पूर्व से ही व्यवहारोपयोगी रही है तथा परवर्ती युग में और विकसित होकर हमारे सम्मुख आती है। वैसे वीणाओं के लिए अंगुल, पर्व एवं यव के नाप का उल्लेख मध्यकालीन ग्रंथकारों तक सभी ने किया है। आधुनिक विद्वान्, जैसे पंडित भातखण्डे तथा अन्य अनुसरणकर्ता तार की लम्बाई 36 इंच मानते हैं, जो गणित की सरलता के लिए एक मोटा हिसाब है।
- वीणाओं के क्रमिक विकास एवं उनके क्रमिक परिवर्तन आधार स्वर-स्थान के परिवर्तन की ओर संकेत करता है, यह बदलती हुई विधि के क्रमशः आधार-स्वर के रूप में, जो अपनी गवेषणा का परिणाम है तथा गंभीर अध्ययन का फल है, विद्वत्जन के समक्ष रखा गया। प्रतिक्रिया सादर स्वीकार्य है।

स्वर तथा श्रुति के प्रतिपादन में परवर्ती ग्रन्थकारों पर शारंगदेव का प्रभाव

प्रस्तुत शोध निबन्ध में स्वर तथा श्रुति के प्रतिपादन में परवर्ती ग्रंथकारों यथा राणा कुम्भ, हृदय नारायणदेव, अहोबल सवाई प्रताप सिंह पर शारंगदेव के अमिट प्रभाव की चर्चा की गई है।

- शारंगदेव का 'संगीत-रत्नाकर' अपने समय का अनूठा ग्रंथ है। इन्होंने राजनीतिक अस्त-व्यस्तता के कारण बिखरे हुए ग्रंथों को एकत्र किया, उनका अध्ययन और मनन किया, फिर उनके सारतत्व को ग्रंथ का रूप दिया। आज के युग में, जबकि भरत से शारंगदेव तक के व्यापक काल में संगीत का एक भी संपूर्ण ग्रंथ प्राप्त होना संभव नहीं, गांधर्व तथा इसके परबर्ती विकास को समझाने में 'संगीत-रत्नाकर' एक स्वयं-संपूर्ण आधार-ग्रंथ है।

- शारंगदेव ने गान के आधारगत स्वरूप 'स्वर' का उल्लेख सर्वप्रथम न करके, ध्वनि और नाद की पहले और तत्पश्चात् श्रुति की चर्चा की है।

- भरत ने 'लक्ष्य' को दृष्टि में रखकर विषय-प्रतिपादन किया है। परवर्ती ग्रंथकारों के सम्मुख लक्ष्य सुप्रतिपादित होने के कारण शारंगदेव ने 'लक्षण' का ग्रहण पहले किया। इसीलिए 'स्वर का कारण' होने के श्रुति का निरूपण भरतेतर ग्रंथकारों ने पहले किया है। इस हेतु भरत को 'लक्षैकचक्षुष्क' और शाङ्गदेवादि को 'लक्षणैकचक्षुष्क' की संज्ञा दी जाती है।

- 17-18वीं शताब्दी के अल्पसंख्यक शास्त्रकारों पर भले ही ऐसे व्यक्तियों का प्रभाव पड़ा हो, जो 24 श्रुतियों को मान्यता देते हों, किन्तु वास्तव में भारतीय संगीत में ऐसा प्रयोग कभी नहीं हुआ। इन शास्त्रकारों को यह भी ज्ञात था कि श्रुतियां 22 होती हैं, अतः इन्होंने शारंगदेव के ग्रंथ का उद्धरण देते हुए 22 श्रुतियों का विवेचन किया है, साथ ही विदेशी विचारों से प्रभावित होने के कारण 24 श्रुतियों का उल्लेख भी किया। परन्तु चंद्र आधुनिक विद्वानों के अतिरिक्त इस पर विस्तृत व्याख्या और कहीं नहीं मिलती।

- उपर्युक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि शारंगदेव के परवर्ती ग्रंथकारों पर शारंगदेव का प्रभाव काफी रहा। उत्तर के ग्रंथकारों पर उनका उतना अधिक प्रभाव परिलक्षित नहीं होता है। जितना दक्षिण के ग्रंथकारों पर था। कारण स्पष्ट है कि वे स्वयं भी दक्षिण में बस गए थे। उत्तर में संगीत-ग्रंथ-रचना की परम्परा मध्ययुग में उतनी अधिक नहीं थी, जितनी दक्षिण में थी। उत्तर में संगीत का व्यासाय करने वाले उच्च वर्ग में निदनीय थे, जबकि दक्षिण में संगीत आनंद का एक साधन रहा। फिर भी उत्तर में संगीत को राज्याश्रय मिलने से जितनी शैलियों और वाद्यों का जन्म व विकास हुआ, दक्षिण में वैसा नहीं हुआ। संगीत में ग्रंथ लिखने के स्थान पर गीत-रचना करना उत्तर में अधिक महत्वपूर्ण और श्रेयस्कर माना जाता था। भरत-शारंगदेव को पढ़ने और समझने की विशेष रूचि उनमें न थी, हाँ, श्रद्धा अवश्य थी। उत्तर में भरत-शारंगदेव को पढ़ने-समझने और समझाने का प्रयास आधुनिक ग्रंथकारों ने किया और उस पर अनुसंधान कर काफी ग्रंथियां सुलझाई गई है। इसी का परिणाम है कि गांधर्व और देशी स्वरों तथा श्रुतियों के स्वरूप आदि विषयों पर खुलकर बात करना आज कठिन एवं असम्भव नहीं रह गया है।

थाट सिद्धांत

थाट सिद्धांत की संपूर्ण व्याख्या और ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को प्रस्तुत लेख आलोकित करता है, जिसके अन्तर्गत थाट, मेल और संस्थान एक ही अर्थ को अभिव्यंजित करने वाले तथा प्रयुक्त होने वाले शब्द हैं।

- थाट अथवा ठाठ शब्द का अर्थ ठठरी या ढांचा है। उत्तर भारत में वीणा के स्वरों को विभिन्न प्रकार के रागों में मिलाने को ठाठ मिलाना कहा जाता है तथा इस शब्द का प्रयोग 'भाषा' या बोली में होने का प्रमाण मिलता है। 'ठाठ' शब्द का उपयोग विशिष्ट रूप से तन्त्रीवादकों के लिए है। वादक 'ठाठ' को राग-विशिष्ट के स्वर-प्राप्ति का साधन मानते हैं, राग-उत्पति का साधन नहीं। मध्ययुग में सामान्य रूप से शास्त्रकारों के द्वारा मेल शब्द का ही प्रयोग किया जाता है। पर्याय शब्द के रूप में उत्तर में संस्थान का भी इसी अर्थ में उपयोग किया जाता है। सोमनाथ ने इन तीनों शब्दों का उल्लेख किया है।

- प्राप्त ग्रंथों में सोमनाथ (17वीं शताब्दी) ने सर्वप्रथम स्पष्ट किया कि मूर्च्छना, मेल, थाट स्थान प्राप्ति के उद्देश्य को पूरा करते हैं। परंतु कुछ आधुनिक विद्वान मुकाम को मेल या थाट से संबंधित मानते हैं। इस बारे में उनकी विचारधारा मेल-राग वर्गीकरण को फारसी शैली की देन मानती है।

- औपपत्तिक पुष्टि के लिए सप्तक सिद्धान्त उपयुक्त है किन्तु रागाभिव्यक्ति या क्रिया-पक्ष के लिए अष्टक सिद्धान्त, क्योंकि क्रिया-पक्ष में जब तक षड्ज या ग्रह-स्वर के दुगुने स्वर तक पहुंचा न जाये, तब तक क्रिया में सम्पूर्णता नहीं आती। सिद्धान्त में मध्यम को तुलादण्ड मानकर दो त्रिकों की स्थापना की गई, जो परस्पर संवादी है, किंतु क्रिया-पक्ष में अष्टक स्वर का नियम रहा है।

- 'मेल', 'संस्थान', 'थाट' समानार्थक शब्द हैं तथा इन शब्दों का प्रयोग अनुमानतः 14वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ। 'संस्थान' का अर्थ है, 'सम्यक् रूप से जांचा गया स्थान।' 'मेल' का अर्थ है, 'मेलन-प्रकार या किसी विशिष्ट स्वरावली को प्राप्त करने की विधि' तथा 'थाट' का अर्थ है, 'स्थिर रहना या ढांचा प्रस्तुत करना'। 'मेल और थाट' लोक भाषा के शब्द हैं तथा 'संस्थान' उसका संस्कृत रूप।
- मेल, संस्थान, थाट- व्यवस्था में 12 स्वरों के नाम अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। इन तीनों शब्दों का आविर्भाव वीणा के स्वरों को प्राप्त करने के उद्देश्य से हुआ।
- सामान्यतः यह माना जाता है कि दक्षिण में 'मेल' शब्द का तथा उत्तर में 'थाट' शब्द का व्यवहार है, जो भ्रमोत्पादक है। वास्तव में 'मेल' शब्द का प्रयोग दक्षिण में शास्त्र व लोक दोनों में होता रहा है उत्तर में केवल शास्त्रों में। उत्तर में शास्त्रज्ञ का क्रमशः अभाव व संगीतज्ञों का बोलबाला होने के कारण लोक-भाषा का प्रभाव केवल 'मेल' पर ही नहीं, बल्कि संगीत की अन्य पारिभाषिक शब्दावलियों पर भी बहुत पड़ा।
- वैसे थाट व मेल में कोई तात्विक अन्त नहीं है, किन्तु गहन अध्ययन से कुछ विशेष अर्थ का प्रयोग स्पष्ट होता है। आधुनिक युग में थाट-पद्धति में एक स्वर के दो रूपों का प्रयोग मान्य नहीं है जबकि दक्षिण में अभी तक ऐसा प्रयोग सर्वमान्य है।
- मुकाम में 17 स्वर हैं तथा प्रत्येक स्वर अलग-अलग तथा सम्पूर्ण इकाई का है जबकि थाट में स्वर मुख्यतः सात हैं। अतः उपर्युक्त अध्ययन हमें यह मानने के लिए बाध्य करता है कि थाट-सिद्धान्त सम्पूर्ण रूप से भारतीय विचारधारा है, जिसका आधार सूत्र रूप में मूर्च्छना नियम में देखा जा सकता है, परन्तु मुकाम कभी भी थाट या मेल-पद्धति का जन्मदाता नहीं हो सकता; क्योंकि दोनों के मूलभूत सिद्धान्त में ही अन्तर है।
- भारत में सप्तक और यूनान में अष्टक को मानने का प्रचलन है। भरत ने मूलतः सात स्वर माने किन्तु इस बात को भी स्वीकारा है कि अलंकारों में 8 स्वरों का प्रस्तार होना चाहिए। सप्तक की उपयुक्तता औपपत्तिक पुष्टि के लिए है, किन्तु बात यदि रागाभिव्यक्ति या फिर क्रियापक्ष की हो, तो वहां अष्टक सिद्धांत ही उपयोगी है।
- मुकाम को मेल-राग वर्गीकरण का आधारभूत तत्व मानने में सत्य का अभाव है। फारसी 'दस्तगाह' और अरबी 'मुकाम' पर्यायवाची शब्द है। इब्राहिम आदिलशाह द्वारा 'किताब-ए-नौरस' में 'दर-ए-मुकाम' शब्द का प्रयोग राग के स्थान पर किया गया। क्योंकि मुकाम गेय है, अतः इसे स्वरग्राम/स्केल मानना गलत है। श्री क्षेत्र, मोहन गोस्वामी तथा इब्राहीम ने 'मुकाम' को गेय माना तथा राग के स्थान पर इस शब्द का प्रयोग किया। उत्तर मध्य काल में शास्त्रकारों का अभाव और ग्रंथों के अध्ययन में संगीतजीवी वर्ग की रूचि कम होने के कारण संगीत की परिभाषिक शब्दावली पर लोक भाषा का प्रभाव पड़ा। उदाहरण के लिए मुर्की, मीड़, खटका, मेलथाट, जमज़मा, सेहतार (सितार) इत्यादि।
- मेल, संस्थान व थाट, इन समानार्थक शब्दों का प्रयोग 14वीं शताब्दी से प्रारम्भ हुआ। तीनों का उद्देश्य वीणा के स्वरों को प्राप्त करना रहा। लेखिका का कहना है कि कुछ लोग ऐसा मानते हैं कि दक्षिण में 'मेल' तथा उत्तर में 'थाट' शब्द का प्रयोग है, जो गलत है। उत्तर में मेल शब्द का प्रयोग शास्त्रों में तथा दक्षिण में शास्त्र व लोक दोनों में रहा। इसका कारण उत्तर में संगीतज्ञों का बोलबाला होना था। मेल व थाट, मुकाम व थाट, मूर्च्छना व थाट इत्यादि में अंतर को बताया गया है।
- भारतीय संगीत की परम्परा में षड़ज को प्रथम श्रुति पर रखने की प्रथा नहीं है। इसलिए भातखण्डे जी के ऐसा करने पर यूरोपीय सिद्धांत का प्रभाव झलकता है। कुछ लोगों अनुसार हृदय नारायण देव, लोचन या अहोबल ने मेल या थाट पद्धति का विकास किया, जो गलत है। इन्होंने केवल बल दिया। मेल या थाट पद्धति इनसे पहले ही शुरू हो गई थी। अमीर खुसरो भारतीय संगीत का ज्ञाता था, जिसे कहने में वो गर्व महसूस करता था, अतः उसे फारस का संगीतज्ञ कहना गलत है।

- थाट सिद्धांत मूलतः भारतीय विचारधारा की ही देन है, जिसका आधार मूर्च्छना है, किन्तु इसका जनक मुकाम को नहीं माना जा सकता। पुस्तक के अंत में तीन परिशिष्ट दिए गए हैं। परिशिष्ट-क में डॉ. चक्रवर्ती द्वारा श्रुति स्थान से संबंधित सारणी दी गई है। परिशिष्ट-ख में डॉ. चक्रवर्ती द्वारा नव-निर्मित राग देवविभा का राग व स्वर परिचय देते हुए विलंबित व द्रुत गत की स्वरलिपि तथा तान-तोड़े व झाला की स्वरलिपि दी गई है। परिशिष्ट-ग में ग्रन्थ पन्जी दी गई है।

विश्लेषण

क्रमांक 1 से 12 तक सभी निबन्धों का विषय विशुद्ध संगीत शास्त्र संबंधी परवर्ती शास्त्रकारों द्वारा प्रतिपादित सिद्धातों और भ्रांतपूर्ण धारणाओं यथा मुकाम पद्धति, संगीत की परिभाषिक शब्दावली श्रुति, ग्राम, मूर्च्छूर्ना, मेल, तान इत्यादि के समाधान से संबंधित है।

सभी निबन्धों में विषय का निरूपण, विश्लेषण एवं मनन समीक्षात्मक विधि से किया गया है। भाषा शैली अत्यन्त प्रभावी सटीक तथा स्पष्ट है। कलिष्ट विषयों को योग्य विधि से सरलीकरण किया गया है। जिनसे संगीत के शोधार्थियों को ज्ञान का नवीन प्रकाश एवं दिशा प्राप्त हुई।

पुस्तक की विषय सामग्री में मूल संस्कृत ग्रंथों एवं भाषा का बहुत प्रभाव है जो कि लेखिका की विषय परिवक्वता, पारंगता, अधिकार व प्रभुत्व को दर्शाता है।

पुस्तक की विषय सामग्री उत्कृष्ट है और इसकी विलक्ष्णता है कि इसमें प्राथमिक स्रोत को ही आधार बनाकर तथ्यों की गई है। सारणियों द्वारा स्पष्ट एवं प्रमाणित करने का सचेष्ट प्रयास किया गया है।